

Think  
IAS... 



 Think  
Drishti

झारखंड लोक सेवा आयोग (JPSC)

# हिन्दी साहित्य का इतिहास



दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम (Distance Learning Programme)

Code: JHM02



झारखंड लोक सेवा आयोग (JPSC)

# हिन्दी साहित्य का इतिहास



641, प्रथम तल, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-110009

दूरभाष : 8750187501, 011-47532596

टोल फ्री : 1800-121-6260

Web : [www.drishtiIAS.com](http://www.drishtiIAS.com)

E-mail : [online@groupdrishti.com](mailto:online@groupdrishti.com)

पाठ्यक्रम, नोट्स तथा बैच संबंधी updates निरंतर पाने के लिये निम्नलिखित पेज को "like" करें

 [www.facebook.com/drishtithevisionfoundation](https://www.facebook.com/drishtithevisionfoundation)

 [www.twitter.com/drishtiiias](https://www.twitter.com/drishtiiias)

<b>1. हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा एवं समस्या</b>	<b>9-28</b>
1.1 साहित्य का इतिहास दर्शन	9
1.2 हिन्दी साहित्येतिहास लेखन की परंपरा	9
1.3 आचार्य शुक्ल पूर्व साहित्येतिहास लेखन	10
1.4 आचार्य रामचंद्र शुक्ल का साहित्येतिहास लेखन परंपरा में योगदान	13
1.5 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का इतिहास लेखन परंपरा में योगदान	15
1.6 आचार्य रामस्वरूप चतुर्वेदी का साहित्येतिहास परंपरा में योगदान	17
1.7 साहित्येतिहास लेखन परंपरा के समकालीन प्रयास	18
1.8 हिन्दी साहित्येतिहास लेखन में काल विभाजन की समस्या	20
1.9 हिन्दी साहित्येतिहास लेखन परंपरा में नामकरण की समस्या	22
1.10 हिन्दी साहित्येतिहास लेखन में इतिहास दर्शन की समस्या	24
1.11 हिन्दी साहित्य के आरंभ का विवाद	26
1.12 साहित्येतिहास के पुनर्लेखन का प्रश्न	26
<b>2. आदिकाल</b>	<b>29-45</b>
2.1 सिद्ध साहित्य	29
2.2 नाथ साहित्य	31
2.3 जैन काव्य	32
2.4 अमीर खुसरो	34
2.5 विद्यापति का काव्य	36
2.6 रासो काव्य धारा	37
2.7 चंदबरदायी कृत पृथ्वीराज रासो	38
2.8 पृथ्वीराज रासो तथा अन्य रासो काव्यों की प्रामाणिकता का प्रश्न	41
2.9 'आदिकाल' के लिये उपयुक्त नामकरण	43
2.10 आदिकाल की सामान्य विशेषताएँ	45

<b>3. भक्तिकाल</b>	<b>46-76</b>
3.1 भक्ति की अवधारणा	46
3.2 भक्तिकाल के दार्शनिक आधार	46
3.3 भक्ति आन्दोलन का उद्भव	48
3.4 निर्गुण भक्ति बनाम सगुण भक्ति	50
3.5 'निर्गुण ज्ञानाश्रयी' या 'संत' काव्यधारा	51
3.6 प्रमुख संत कवियों का परिचय	53
3.7 सूफी काव्यधारा (निर्गुण प्रेमाश्रयी काव्य)	57
3.8 सूफी शब्द का अर्थ	60
3.9 सूफी प्रेम पद्धति : भारतीय या अभारतीय	60
3.10 प्रमुख सूफी कवि	61
3.11 कृष्ण भक्ति काव्यधारा	63
3.12 कृष्ण काव्य का दार्शनिक आधार	65
3.13 प्रमुख कृष्ण कवि	66
3.14 रामभक्ति काव्यधारा	70
3.15 प्रमुख रामभक्त कवि	73
3.16 भक्तिकाव्य की सामान्य विशेषताएँ	75
<b>4. रीतिकाल</b>	<b>77-99</b>
4.1 रीति से अभिप्राय	77
4.2 रीतिकाल का नामकरण	77
4.3 रीतिकाल के उदय की पृष्ठभूमि	79
4.4 रीतिकाल के साहित्य का वर्गीकरण	80
4.5 रीतिकाव्यधारा या रीतिबद्ध काव्यधारा	81
4.6 केशवदास (1555-1617 ई.)	83
4.7 पद्माकर (1753-1833 ई.)	86
4.8 अन्य रीतिबद्ध कवि	88
4.9 रीतिसिद्ध काव्य	89



4.10	कवि बिहारीलाल	90
4.11	रीतिमुक्त या रीति स्वच्छंद काव्यधारा	91
4.12	घनानंद (1673-1761 ई.)	92
4.13	रीतिइतर काव्य	93
4.14	रीतिकाल के पतन के कारण	97
4.15	रीतिकालीन साहित्य के लिये समुचित और प्रासंगिक प्रतिमान	97
<b>5.</b>	<b>आधुनिक काल</b>	<b>100-118</b>
5.1	भारतेन्दु युग	100
5.2	भारतेन्दु युग की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ	101
5.3	भारतेन्दुयुगीन साहित्य में जिंदादिली	103
5.4	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनका साहित्य	103
5.5	भारतेन्दु मंडल के अन्य सदस्य	106
5.6	“हिन्दी नए चाल में ढली, 1873 में”	107
5.7	नवजागरण की अवधारणा	107
5.8	द्विवेदी युग	109
5.9	द्विवेदी युगीन प्रवृत्तियाँ/विशेषताएँ	109
5.10	द्विवेदी युग में भाषायी अद्वैत	113
5.11	द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता	114
5.12	आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की संपादन कला	115
5.13	मैथिलीशरण गुप्त (सन् 1886-1964)	116
5.14	द्विवेदी युग के अन्य प्रमुख कवि	117
<b>6.</b>	<b>छायावाद</b>	<b>119-138</b>
6.1	परिचय	119
6.2	छायावाद से तात्पर्य	119
6.3	छायावाद के उदय के कारण, परिस्थितियाँ	120
6.4	छायावाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ	121
6.5	छायावाद एवं स्वच्छंदतावाद	123
6.6	छायावाद एवं रहस्यवाद	124

6.7	छायावाद की राष्ट्रीय चेतना	124
6.8	छायावाद की सौन्दर्य चेतना	125
6.9	छायावाद में वैयक्तिकता	126
6.10	छायावाद के काव्य रूप	127
6.11	प्रमुख कवयित्री: महादेवी वर्मा	128
6.12	प्रमुख कवि: जयशंकर प्रसाद	129
6.13	प्रमुख कवि: सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'	130
6.14	प्रमुख कवि: सुमित्रानंदन पंत	132
6.15	उत्तर-छायावाद	134
6.16	राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा	136
<b>7.</b>	<b>प्रगतिवाद</b>	<b>139-146</b>
7.1	परिचय	139
7.2	पृष्ठभूमि व परिस्थितियाँ	139
7.3	छायावाद और प्रगतिवाद में संबंध	140
7.4	प्रगतिशील व प्रगतिवाद में अंतर	140
7.5	प्रगतिवाद का साहित्यिक दृष्टिकोण	141
7.6	प्रगतिवाद और चेतना	142
7.7	प्रगतिवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ	142
7.8	प्रमुख प्रगतिवादी कवि	145
<b>8.</b>	<b>प्रयोगवाद</b>	<b>147-153</b>
8.1	परिचय	147
8.2	प्रयोगवाद के प्रेरणा-स्रोत	147
8.3	प्रगतिवाद व प्रयोगवाद में अंतर	149
8.4	प्रयोगवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ	149
8.5	प्रपद्यवाद या नकेनवाद	152
<b>9.</b>	<b>नई कविता</b>	<b>154-167</b>
9.1	परिचय	154
9.2	नई कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ	155

9.3	नई कविता और लघुमानववाद	159
9.4	नई कविता और विसंगतिबोध	160
9.5	नई कविता में फैंटेसी शिल्प	161
9.6	समकालीन कविता	162
<b>10.</b>	<b>हिन्दी उपन्यास का विकास</b>	<b>168-202</b>
10.1	उपन्यास	168
10.2	उपन्यास के तत्व	169
10.3	उपन्यास और यथार्थवाद में संबंध	172
10.4	हिन्दी का पहला उपन्यास	174
10.5	हिन्दी उपन्यास का विकास	174
10.6	प्रेमचंदयुगीन उपन्यास	176
10.7	प्रेमचंद पश्चात् युग	180
10.8	हिन्दी के विशिष्ट उपन्यासकार	189
<b>11.</b>	<b>हिन्दी कहानी का विकास</b>	<b>203-231</b>
11.1	कहानी का परिचय	203
11.2	कहानी और उपन्यास में तुलना	203
11.3	हिन्दी कहानी की विकास यात्रा	204
11.4	हिन्दी कहानी में दलित चेतना व विमर्श	221
11.5	हिन्दी कहानी और स्त्री विमर्श	222
11.6	हिन्दी कहानी की वर्तमान स्थिति	225
11.7	युवा कहानी	227
11.8	हिन्दी के अन्य प्रमुख कहानीकार	228
<b>12.</b>	<b>हिन्दी नाटक का विकास</b>	<b>232-256</b>
12.1	हिन्दी नाटक विधा का आरंभ	232
12.2	हिन्दी नाट्य साहित्य का विकास	232
12.3	हिन्दी नाटक और राष्ट्रीय चेतना	236
12.4	हिन्दी के प्रमुख नाटककार	240

12.5	एकांकी	253
12.6	कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण नाटककार	254
13.	हिन्दी निबंध का विकास	257-267
14.	हिन्दी आलोचना/समीक्षा का विकास	268-297
14.1	सैद्धांतिक और व्यावहारिक आलोचना	268
14.2	हिन्दी आलोचना का इतिहास	268
14.3	हिन्दी आलोचना का शुक्ल पूर्व युग	269
14.4	शुक्लयुगीन आलोचना	270
14.5	शुक्लेत्तर आलोचना	274
14.6	हिन्दी समीक्षा के नए मुहावरे	280
14.7	हिन्दी समीक्षा पर पाश्चात्य समीक्षा का प्रभाव	281
14.8	मार्क्सवादी व रसवादी समीक्षा में अंतर	283
14.9	हिन्दी के प्रमुख आलोचक	284
15.	हिन्दी गद्य की अन्य विधाएँ	298-310
15.1	हिन्दी रेखाचित्र : उद्भव और विकास	298
15.2	हिन्दी संस्मरण : उद्भव एवं विकास	299
15.3	हिन्दी यात्रा वृत्तांत : उद्भव एवं विकास	301
15.4	आत्मकथा	304
15.5	जीवनी	305
15.6	रिपोतार्ज	306

## 1.1 साहित्य का इतिहास दर्शन

इतिहास का संबंध अतीत से है तथा इसके अंतर्गत केवल वास्तविक या यथार्थ घटनाओं को ही समाहित किया जाता है। इसके अंतर्गत भूत की यथार्थ घटनाओं और परिस्थितियों से संबंधित सभी लिखित व मौखिक वृत्तों को सम्मिलित किया जाता है। कहा जा सकता है कि 'इतिहास' शब्द से सांस्कृतिक व राजनीतिक इतिहास का ही बोध होता है, परंतु यह भी सत्य है कि प्रकृति की कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है कि प्रकृति की कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जिसका संबंध इतिहास से न हो। अतः साहित्य भी इतिहास से अछूता नहीं है।

दरअसल साहित्यिक रचनाएं साहित्यकारों की रचनात्मक व सर्जनात्मक क्रियाओं और प्रवृत्तियों की सूचक होती हैं। दूसरे शब्दों में कहे तो साहित्य के इतिहास के अध्ययन में प्राकृतिक घटनाओं व मानवीय क्रियाकलापों को दरकिनार कर साहित्यिक रचनाओं का ऐतिहासिक दृष्टिकोण शामिल किया जाता है।

वर्तमान में साहित्य का अध्ययन मात्र साहित्य तक सीमित नहीं रह गया है वरन् उससे संबंधित राष्ट्रीय परंपराओं, आर्थिक परिस्थितियों, सामाजिक वातावरण, युगीन चेतना व वैयक्तिक साहित्यिक प्रवृत्तियों द्वारा विवेचन-विश्लेषण उसकी शैलीगत प्रक्रियाओं व विषयगत प्रवृत्ति के स्पष्टीकरण हेतु किया जाता है। अतः साहित्य की इस विकास-प्रक्रिया का अध्ययन करने के लिये उससे संबंधित निम्न तत्वों पर विचार किया जाना चाहिये- (1) सर्जनशक्ति (2) परंपरा (3) वातावरण (4) द्वंद्व (5) संतुलन। साहित्य के क्षेत्र में प्राकृतिक सर्जनशक्ति (साहित्यकार की प्राकृतिक प्रतिभा), परंपरा (साहित्यिक एवं सांस्कृतिक परंपराएं) तथा वातावरण (युगीन चेतना, प्रवृत्ति एवं परिस्थितियाँ) के द्वंद्व से प्रेरित होकर आगे बढ़ती है, जिसका चरम द्वंद्व के दोनों पक्षों में संतुलन स्थापित करना होता है। यही द्वंद्व एक रचनाकार या साहित्यकार की मूल प्रेरणा बनता है, किंतु स्थितिविशेष व व्यक्तिविशेष के अंतर से द्वंद्व का क्षेत्र परिवर्तित होता रहता है; अर्थात् कोई साहित्यकार अपने ही आंतरिक या मानसिक द्वंद्व से परिचालित होता है तो कोई पारिवारिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक द्वंद्व से। वस्तुतः युगीन वातावरण व परंपरा के अंतर्विरोध से उत्पन्न द्वंद्व ही साहित्य को विभिन्न धाराओं, प्रवृत्तियों तथा आंदोलनों को गति प्रदान करता हुआ साहित्य की विकास-प्रक्रिया को अग्रसर करता है।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि साहित्य के ऐतिहासिक स्वरूप को समझने के लिये इसके इतिहास को समझने की जरूरत पड़ती है। प्रत्येक इतिहासकार उपलब्ध संसाधनों तथा अपने परिवेश के आधार पर इतिहास लेखन करता है और समय के साथ अतीत के संदर्भ में नई नई जानकारीयाँ प्राप्त होती रहती हैं। परिणामतः इन स्थापित मान्यताओं के मूल्यांकन की हमेशा आवश्यकता बनी रहती है। अतः इन ऐतिहासिक सवालों पर विचार साहित्य-इतिहास चिंतन के अंतर्गत किया जाता है।

## 1.2 हिन्दी साहित्येतिहास लेखन की परंपरा

हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की एक सुदीर्घ परंपरा है। यद्यपि 19वीं सदी से पूर्व विभिन्न कवियों व लेखकों द्वारा कई ऐसे ग्रंथों की रचना हो चुकी थी, जिनमें हिन्दी के विभिन्न कवियों के कृतित्व व जीवनवृत्त का परिचय दिया गया है। किंतु विद्वानों में सहमति है कि इस परंपरा का 'टर्निंग पॉइंट' आचार्य शुक्ल का साहित्येतिहास लेखन से आना है। अतः इस संपूर्ण परंपरा को आचार्य शुक्ल पूर्व, शुक्ल युगीन तथा शुक्लोत्तर कालखंडों में बाँटकर देखा जा सकता है।

लगातार बनी रहने वाली आवश्यकता है। जहाँ तक दृष्टिकोण का सवाल है, उस बिन्दु पर भी नए इतिहास की जरूरत महसूस की जा सकती है। वर्तमान काल में यह माना जा चुका है कि इतिहास का मूल तत्व 'तथ्य' नहीं, उसकी व्याख्या में प्रयुक्त होने वाली 'इतिहास दृष्टि' है। हिन्दी साहित्य के जो इतिहास लिखे गए हैं, उनमें इतिहास दृष्टि धीरे-धीरे परिपक्वता की ओर बढ़ती गई है और अब शायद किसी नई दृष्टि की नहीं बल्कि उन्हीं दृष्टियों के तार्किक समन्वय की आवश्यकता अधिक है। इसके साथ यह ध्यान रखा जाना चाहिये कि इतिहासकार की दृष्टि किसी भी प्रकार के वैचारिक पूर्वाग्रह या दुराग्रह से मुक्त हो।

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर समग्र रूप से कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य की इतिहास परंपरा में नवीन इतिहास या प्राचीन इतिहासों के नवीकरण की आवश्यकता बनी हुई है। किसी भी परंपरा में परिपक्वता एक क्षण में नहीं आती बल्कि कई प्रयासों के परिणाम से आती है। वर्तमान में हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा इतनी समृद्ध हो चुकी है कि हम एक आदर्श इतिहास की परिकल्पना कर सकते हैं। हिन्दी साहित्य को एक ऐसे इतिहास की आवश्यकता है जिसमें वर्तमान समय तक के अनुसंधानों से प्रमाणित नवीन तथ्य समाविष्ट हों, जिसमें कविता या गद्य, मुक्तक या प्रबंध जैसे साहित्य खंडों के बीच इतिहासकारों के मूल्यों से पैदा होने वाले मतभेद न हों और जिसमें आचार्य शुक्ल की इतिहास दृष्टि का 'युग तत्व', आचार्य द्विवेदी की इतिहास दृष्टि का 'परंपरा तत्व' तथा डॉ. चतुर्वेदी की इतिहास दृष्टि का 'विश्लेषण' तथा 'समन्वय तत्व' एक साथ विद्यमान हों।

### दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. साहित्येतिहास-लेखन की विधेयवादी प्रणाली क्या है? 6<sup>th</sup> JPSC (Mains)
2. हिन्दी साहित्य के 'आदि काल' के अन्य नामों की अनुपयुक्तता पर विचार कीजिये। 6<sup>th</sup> JPSC (Mains)
3. हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा का उल्लेख कीजिये।
4. हिन्दी साहित्येतिहास लेखन परंपरा में नामकरण की समस्या पर चर्चा कीजिये।
5. हिन्दी साहित्येतिहास लेखन में काल विभाजन की समस्या को स्पष्ट कीजिये।

आदिकाल परस्पर विरोधी व विभिन्न प्रवृत्तियों का काल रहा है। मगध सम्राट हर्षवर्धन के पश्चात् कोई भी मजबूत केंद्रीय सत्ता स्थापित नहीं हो पायी। अतः युद्ध या बाहरी आक्रमणों का कोई प्रभाव आम जनता पर नहीं पड़ता था। इस दौर में लिखे गए काव्यों के प्रमुख विषय राजाओं पर (भूमि व नारी हरण) होने लगे। चूंकि यह एक सामंती दौर था और सामंतीवादी व्यवस्था में संपत्ति का प्रमुख स्रोत भूमि ही होती है तथा वंश या रक्त की उच्चता एवं शुद्धता में नारी की भूमिका निर्णायक होती है। अतः इस दौर में लिखे गए काव्यों के प्रमुख विषय राजाओं पर (भूमि व नारी हरण) होने लगे। सामान्य जनता के दैनिक जीवन पर राज्य (सत्ता) की अपेक्षा धार्मिक मतों का प्रभाव अधिक था। साहित्य के क्षेत्र में देखें तो इस काल में संस्कृत के साथ-साथ प्राकृत व अपभ्रंश में भी रचनाएँ हो रही थीं तो साथ ही हिन्दी भी अपभ्रंश के कंचुल को छोड़ती हुई धीरे-धीरे अपना नया रूप ग्रहण कर रही थी।

इस काल के विस्तृत-विशाल क्षेत्र में विभिन्न स्थानों पर लिखी गई कृतियों में आवागमनीय साधन के कम विकास के कारण भाषागत विभिन्नता अर्थात् क्षेत्रीयता का रंग अधिक दिखाई पड़ता है। यहीं कारण है कि आदिकाल का साहित्य अनेक बोलियों का साहित्य प्रतीत होता है। दरअसल आदिकाल कई दृष्टियों से एक संधि काल रहा है। धार्मिक दृष्टि से देखे तो इस काल में अनेक ज्ञात व अज्ञात साधनाएँ प्रचलित थीं। सिद्ध, नाथ तथा जैन इत्यादि मतों का इस दौर में व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। वस्तुतः इस काल में इनका साहित्य भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हुआ है। वहीं वैष्णव मत का धार्मिक साधना के रूप में प्रसार आम जनमानस में कुछ कम मालूम पड़ता है क्योंकि वैष्णव मतावली साहित्य यहाँ अपेक्षाकृत कम ही मिलता है। वहीं इस समय में इस्लाम का प्रवेश हो चुका था लेकिन साहित्य पर इसका प्रभाव कम ही दिखाई पड़ता है। वस्तुतः इस्लाम का प्रभाव आदिकाल के अंतिम चरण में अमीर खुसरों के साहित्य पर ही कुछ दिखाई पड़ता है।

## 2.1 सिद्ध साहित्य

सिद्ध साहित्य आदिकालीन साहित्य का एक महत्वपूर्ण अंश है, जिसका संबंध बौद्ध धर्म की सिद्ध परंपरा से है। सिद्ध आंदोलन वज्रयान से संबंधित है, जिसके समर्थक तंत्र-मंत्र की साधना से सिद्धि प्राप्त करना चाहते थे। पं. राहुल सांकृत्यायन ने सिद्धों की संख्या 84 मानी है, जिनमें प्रमुख हैं- सरहपा, शबरपा, लुईपा, कणहपा, डोम्भिपा आदि।

अभी तक 14 सिद्धों की रचनाएँ उपलब्ध हो चुकी हैं, जिनमें 'दोहा-कोश' तथा 'चर्यापद' सबसे महत्वपूर्ण हैं। सिद्धों ने अपनी मान्यताओं का प्रचार करने के लिये जनभाषा में जो साहित्य रचा, उसी को सिद्ध साहित्य कहा जाता है।

सिद्धों ने अपनी धार्मिक, सांप्रदायिक मान्यताओं को अपने साहित्य के माध्यम से व्यक्त किया। बौद्ध परंपरा से संबंधित होने के कारण वे वैदिक मान्यताओं तथा वर्ण-व्यवस्था इत्यादि का तीव्र खंडन करते हैं और नैरात्म्य भावना, सहजशून्य की साधना और कायायोग इत्यादि का वर्णन करते हैं। उनका दावा है कि जो पंडित लोग सारे आगम, वेद, पुराण पढ़ चुके हैं, वे भी परम सत्य को नहीं जानते। सत्य तो यह है कि बुद्ध या परम तत्व का अस्तित्व हमसे बाहर नहीं, हमारे भीतर ही है-

“पंडित सअल सत्य बक्खाणअ,

देहहिं बुद्ध बसन्त ण जाणअ।”

“आगम-वेअ-पुणेहि पण्डित माण वहन्ति,

पक्क सिरीफले अलिअ जिम, बाहेरीअ भमन्ति।”

(जैसे भौरा पके हुए बेल के बाहर ही बाहर घूमता है, रसास्वादन नहीं कर पाता; उसी प्रकार पंडित लोग आगम, वेद व पुराण को सिर्फ ढोते रहते हैं, उनका सारतत्व नहीं जान पाते)

हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल में तात्पर्य उस काल से है, जिसमें प्रमुखतः भावगत् धर्म के प्रचार-प्रसार के फलस्वरूप भक्ति-आंदोलन प्रारंभ हुआ तथा उसकी लोकोन्मुखी प्रवृत्ति के कारण धीरे-धीरे लोक-प्रचलित भाषाएँ भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति का माध्यम बनने लगी। कालांतर में यह भावना वैष्णव धर्म के अतिरिक्त बौद्ध, जैन, शैव, शाक्त आदि सभी धर्मों तक प्रभावित हुई।

### 3.1 भक्ति की अवधारणा

“भक्ति धर्म का रसात्मक रूप है”— आचार्य शुक्ल ने भक्ति की अत्यंत सारगर्भित परिभाषा अपनी सूत्र शैली में इस प्रकार दी है। वस्तुतः धर्म के भीतर ईश्वर या अलौकिक सत्ता के साथ संबंध स्थापित करने की चार प्रमुख प्रणालियाँ या पद्धतियाँ मानी गयी हैं— ज्ञान, कर्म, योग तथा भक्ति। जहाँ तक ज्ञानमार्ग का प्रश्न है, वह न केवल नीरस व शुष्क है बल्कि अत्यंत सूक्ष्म तथा जटिल होने के कारण विशिष्ट वर्ग तक ही सीमित है। यही कारण है कि शंकराचार्य द्वारा ज्ञानमार्ग की स्थापना के बावजूद लोक जीवन में उसे पूर्ण स्वीजति कभी नहीं मिली। योग मार्ग शारीरिक साधना पर आधारित है जो शुष्क-क्रिया प्रधान होने के कारण नीरस है। पुनः इसमें निहित कठिनाइयों के कारण यह भी एक वर्ग तक ही सीमित है जो कठोर शारीरिक अनुशासन तथा नियमन में समर्थ है। कर्ममार्ग का अर्थ है बाह्य विधि-विधान, आडम्बर, देशाटन, तीर्थाटन इत्यादि। यह मार्ग बोधगम्यता की दृष्टि से सरल है, अतः सर्वजनसुलभ है किन्तु इसमें भी वह रसात्मकता नहीं पाई जाती जो भक्ति में है। इसके अतिरिक्त, आर्थिक रूप से वंचित वर्ग के लिये यह मार्ग हमेशा कठिन माना गया है। भक्ति मार्ग धर्म का रसात्मक रूप है क्योंकि यह बुद्धि, शरीर या क्रियाओं पर आधारित न होकर मनुष्य की भावनाओं पर आधारित है। ईश्वर विषयक रति के भाव की अभिव्यक्ति ही भक्ति है। स्पष्ट है कि भक्ति न केवल सर्वजनसुलभ है बल्कि सर्वाधिक मार्मिक भी है। यही कारण है कि लोक जीवन में जब धर्म ने आंदोलन का रूप लिया तो उसका माध्यम भक्ति ही बनी; न कि ज्ञान, योग या कर्म।

### 3.2 भक्तिकाल के दार्शनिक आधार

निर्गुण धारा व सगुण धारा के नाम से भक्ति की दो धाराएँ प्रवाहित हुईं। दरअसल निर्गुण होने का अर्थ गुणरहित नहीं बल्कि गुणातीत से है। निर्गुण व सगुण मतवाद का अंतर अवतार एवं लीला की दो अवधारणाओं से है। निर्गुण मत के देव का न तो कोई अवतार है और न ही कोई लीला जबकि वे कृपालु, सहृदय, दयावान, करुणाकार होने के साथ-साथ मानवीय भावनाओं से युक्त हैं। वे निराकार हैं। वहीं सगुण मत के देव अवतार लेते हैं, दुष्टों का दमन करते हैं, साधुओं की रक्षा व अपनी लीला से भक्तजनों के चित्त का रंजन करते हैं।

निर्गुण व सगुण धारा दोनों प्रकार की भक्ति का मुख्य लक्षण है— अनन्यता व भगवद्विषयक रति। सिद्ध नाथों के आसन-प्रणायाम, सहज-समाधि, शरीर, प्राण, मन, वाणी की अचंचलता आदि सबका योग इसी भक्तिधारा में विलीन हो गए हैं।

भक्ति के अनेक संप्रदाय हैं और उनमें से प्रमुख हैं— श्री संप्रदाय, रूद्र संप्रदाय, ब्राह्म संप्रदाय, सनकादि या निंबांक संप्रदाय।

- **श्री संप्रदाय:** इस संप्रदाय के आचार्य रामानुजाचार्य हैं। इसी संप्रदाय की परंपरा में रामानंद हुए। रामानंद ने स्त्री-पुरुष, राजा-रंक, अवर्ण-सवर्ण सभी को अपना शिष्य बनाया। रामानंद का मानना था कि ऋषियों के नाम पर गोत्र और परिवार बन सकते हैं, तो ऋषियों के भी पूजित परमेश्वर के नाम पर सब का परिचय क्यों नहीं दिया जा सकता। इस प्रकार सभी भाई-भाई है, सभी एक जाति के हैं। श्रेष्ठता भक्ति से आती है, जाति से नहीं।” अतः इनके बारह शिष्य प्रसिद्ध हुए—



## 4.1 रीति से अभिप्राय

इस प्रश्न को लेकर काफी मतभेद रहा है कि रीतिकाल नाम में निहित 'रीति' शब्द का अर्थ क्या है? कुछ विद्वान मानते हैं कि यह काव्यशास्त्र का रीति संप्रदाय है जिसके प्रवर्तक आचार्य वामन हैं। इस संप्रदाय में काव्य की प्रमुख शैलियों के रूप में कुछ रीतियों की चर्चा की गई है। भाषा के विशेष प्रकार के प्रयोग से ये रीतियाँ निर्धारित होती हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल सहित कई विद्वानों ने स्पष्ट किया है कि 'रीतिकाल' नामकरण में रीति शब्द का प्रयोग रीति संप्रदाय के संदर्भ में नहीं हुआ है। इसका अर्थ है- अनुकरण करने की प्रवृत्ति। इस काल में बहुत सी रचनाएँ काव्यशास्त्रीय या अन्य प्रकार के शास्त्रीय ग्रंथों अथवा सिद्धांतों के अनुकरण में लिखी गईं। अनुकरण की यह परंपरा या मानसिकता ही 'रीति' कहलाई। इस अर्थ में, रीतिकाव्य वह काव्य है जिसकी रचना विशिष्ट पद्धति अथवा नियमों को दृष्टि में रखकर की गई हो।

रीतिकाल की इस अनुकरणमूलक मानसिकता के लिये 'रीति' शब्द का प्रयोग हिन्दी के आधुनिक साहित्येतिहासकारों ने नहीं किया, बल्कि रीतिकाल के कवियों ने ही करना आरंभ कर दिया था। उदाहरण के लिये, कुछ कवियों के कथन देखे जा सकते हैं -

“रीति सुभाषा कवित्त की बरनत बुध अनुसार” (चिंतामणि)

“अपनी-अपनी रीति के काव्य और कवि रीति।” (देव)

“काव्य की रीति सिखी सुकवीन सों।” (भिखारीदास)

'रीति' शब्द के इस प्रकार के सर्वसम्मत प्रयोग के कारण हिन्दी साहित्येतिहासकारों ने भी इस काल की विशिष्ट काव्य-प्रणाली को 'रीतिकाव्य' कहना ठीक समझा है।

## 4.2 रीतिकाल का नामकरण

हिन्दी साहित्य का उत्तर-मध्यकाल (लगभग 1650-1850 ई०) नामकरण की दृष्टि से विद्वानों में पर्याप्त मतभेद का विषय रहा है। मिश्रबंधु ने इस काल को 'अलंकृत काल' कहा है, जॉर्ज ग्रियर्सन और आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'रीतिकाल', विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'शृंगार काल' तथा रमाशंकर शुक्ल रसाल और भगीरथ मिश्र ने इसे 'कलाकाल' कहा है।

### अलंकृत काल

मिश्रबंधुओं द्वारा इस नामकरण का आधार उन्हीं के शब्दों में यह है कि “इस समय के कवियों ने सालंकार भाषा लिखने का अधिक प्रयत्न किया।” यहाँ अलंकार शब्द का अंग्रेज़ी के 'ऑर्नेट' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अलंकारों के प्रचुर प्रयोग से कवि श्रोताओं व पाठकों को चौंकाना चाहते हैं।

किंतु, 'अलंकृत काल' को उत्तर-मध्यकाल के नाम के रूप में स्वीकृति देना कठिन प्रतीत होता है। पहली बात यह है कि यह कविता केवल अलंकृत ही नहीं है, अन्य काव्यांगों जैसे-रस, ध्वनि, वक्रोक्ति आदि को भी इस काव्य में यथोचित स्थान प्राप्त हुआ है। कवियों ने अलंकारों से अधिक ध्यान रस पर दिया है। इसके अतिरिक्त, 'अलंकृत काल' नामकरण इस युग की कविता को चाहे व्यक्त कर दे, लक्षण-ग्रंथों को नहीं समेट पाता। लक्षण-ग्रंथों को नाम से बाहर रखकर सम्यक् नामकरण नहीं हो सकता क्योंकि यह इस काल की अत्यंत महत्वपूर्ण तथा अनूठी प्रवृत्ति है।

### शृंगार काल

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इस काल को 'शृंगार काल' कहा है। इसका कारण यह है कि इस युग में शृंगार से ओत-प्रोत रचनाओं की अधिकता मिलती है। रस का प्रमुखत्व अन्य काव्यांगों पर रहा है और शृंगार का रसों पर। मिश्र जी

आधुनिक काल का विकास क्रम हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक शताब्दी पहले ही शुरू हो गया था, अतः साहित्य में परिवर्तन के चिह्न स्पष्टतः 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में दिखाई पड़ने लगे थे। हिन्दी साहित्येतिहास के क्षेत्र में आधुनिक जीवनबोध के प्रवर्तक हरिश्चन्द्र का जन्म सन् 1850 में 19वीं शती के ठीक मध्य में हुआ। अतः इतिहास लेखन के विद्वानों ने इसी वर्ष को आधुनिक हिन्दी साहित्य का प्रारंभिक वर्ष मान लिया। वहीं इस समय की पारिस्थितियों को देखें तो यह काल दो विरोधी ताकतों सामंतवाद तथा पूंजीवाद के टकराहट का काल भी था। सामंती शक्तियाँ समाप्त हो गई थीं और इन्हीं सामंतवादी शक्तियों की सभी संभावनाएँ समाप्त होने के पश्चात् देश का प्रबुद्ध वर्ग नए सिरे से सोचना शुरू कर रहा था। जबकि अंग्रेज शासकों के द्वारा भी देश की परंपरा को समझ कर आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का नवीनीकरण किया गया।

‘आधुनिक’ शब्द-नवीन इहलौकिक दृष्टिकोण तथा मध्यकाल से भिन्नता, दो अर्थों को सूचित करता है। चूँकि मध्यकाल अपने अवरोध, रूढ़िवादिता और जड़ता के कारण स्थित व एकरस हो चुका था तथा यही प्रभाव इस दौर के साहित्य पर भी पड़ा। वहीं रीतिकाल में साहित्य व कला दोनों ही अपने-अपने कथ्य, अलंकृति व शैली में एकरूप में हो चुके थे। अतः इस दौर में साहित्य लेखन में न छंद वैविध्य था और न ही विन्यास वैविध्य, वस्तुतः एक ही प्रकार के छंद और एक ही प्रकार का ढंग साहित्य में छाया था। आधुनिक काल में साहित्य पर छाया इस एकरूपता का बांध टूटा और जीवन की धारा विविध स्रोतों के माध्यम से फूट पड़ीं अतः साहित्य पहली बार मानव जीवन के वृहत्तर सुख-दुःख से जुड़ गया।

दूसरी ओर ‘इहलौकिक दृष्टिकोण’ के रूप में ‘आधुनिक’ का अर्थ है- धर्म, दर्शन, साहित्य चित्र आदि के प्रति तमाम प्रकार के नए दृष्टिकोण का आविर्भाव। मध्यकाल में मानव परलौकिक दृष्टि से अधिक आच्छन्न था कि उसे अपने चारों ओर के परिवेश की कोई सुध नहीं थी। जबकि आधुनिक काल में मनुष्य अपने पर्यावरण के प्रति अधिक सतर्क हो गया। सुधार, परिष्कार तथा अतीत का पुनराख्यान नवीन दृष्टिकोण की देन है। और आगे चलकर ब्रजभाषा को पछाड़ खड़ी बोली का साहित्य के क्षेत्र में छाना भी आधुनिक युग की ही देन है।

## 5.1 भारतेन्दु युग

हिन्दी साहित्य के इतिहास में 1850 ई. से 1900 ई. तक के कालखंड को भारतेन्दु युग कहा जाता है। गौरतलब है कि 1850 ई. से हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग की शुरुआत होती है जो आज तक चल रहा है। आधुनिक युग को कई उपखंडों में बाँटा गया है जिनमें से पहला भारतेन्दु युग है। यह हिन्दी साहित्य के इतिहास का पहला युग है जिसका नामकरण किसी रचनाकार के नाम पर हुआ है। वस्तुतः भारतेन्दु का व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली था कि उनके नाम पर ही इस युग का नाम रखा गया।

भारतेन्दु का जन्म 1850 ई. में हुआ। भारतेन्दु ने कई प्रबंध तथा कई मुक्तक कविताएँ रचीं। इसके अतिरिक्त उन्होंने नाटक, निबन्ध, रंगमंच आदि विधाओं पर भी अपनी लेखनी चलाई। पत्रकारिता के क्षेत्र में भारतेन्दु ने ‘कवि वचन सुधा’, ‘हरिश्चंद्र मैगज़ीन’ आदि पत्र चलाकर प्रथम हिन्दी समाचार पत्र ‘उदंत मार्तण्ड’ की परम्परा को कायम रखा।

भारतेन्दु ने गद्य में भी विविध विधाओं की शुरुआत की। उन्होंने उन सभी आवश्यक विषयों पर लिखा जिनसे नवजागरण का आधार तैयार हुआ। भारतेन्दु का प्रभाव उस युग के सभी साहित्यकारों पर ही नहीं बल्कि बाद के साहित्यकारों पर भी पड़ा।

### भारतेन्दु युग का नामकरण

किसी युग का नामकरण दो आधारों पर किया जा सकता है। पहला आधार तो यह हो सकता है कि उस युग की प्रमुख प्रवृत्ति पर युग का नामकरण किया जाए जैसे भक्तिकाल या रीतिकाल। दूसरा आधार यह हो सकता है कि उस युग का नाम

## 6.1 परिचय

छायावाद 1918-1936 ई. तक चला हिन्दी कविता के इतिहास का प्रसिद्ध आंदोलन है जिसमें चार प्रमुख कवि शामिल रहे हैं- जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रानंदन पंत और महादेवी वर्मा। इस आंदोलन के मूल्यांकन को लेकर इतने अधिक विवाद हैं कि कुछ लोग इसे आधुनिक काल का स्वर्ण युग कहते हैं तो कुछ अन्य की निगाह में यह आंदोलन अपनी सामाजिक जिम्मेदारियों से कटा होने के कारण विशेष सम्मान का पात्र नहीं हैं। लंबे समय तक हुए विवादों के बाद हिन्दी समीक्षा की वर्तमान औसत राय यह है कि छायावाद अपने समय के दायित्वों को गंभीर और सूक्ष्म स्तर पर निभाने वाला आंदोलन था और वह निश्चित तौर पर हिन्दी साहित्य की एक महती उपलब्धि है।

छायावाद की उपयुक्त समझ के लिए यह जानना जरूरी है कि छायावाद एक स्थिर आंदोलन न होकर अपनी प्रकृति में विकासशील रहा है। 1918 के आसपास इन कवियों ने जैसी भाव प्रवण कविताएँ लिखीं, वे उन कविताओं से काफी अलग हैं जो यही कवि 1930-36 के दौर में लिख रहे थे। इसलिए छायावाद के मूल्यांकन में यह द्वंद्व हमेशा रहता है कि किस दौर की कविताओं को आधार बनाकर निष्कर्ष निकाले जाएँ। बेहतर यही होगा कि कोई भी निष्कर्ष निकालने से पहले हम इस बात की जाँच कर लें कि हमारे उदाहरण सिर्फ आरंभिक दौर की कविताओं के तो नहीं हैं।

## 6.2 छायावाद से तात्पर्य

‘छायावाद’ शब्द के अर्थ के सम्बन्ध में विद्वानों ने विभिन्न मत दिए परंतु छायावाद की कोई एक निश्चित परिभाषा कभी तय नहीं हो सकी। इस शब्द के प्रथम प्रयोक्ता मुकुटधर पांडेय ने अपने निबंधों में छायावाद की पाँच विशेषताओं का उल्लेख किया है जो इस प्रकार हैं- (1) वैयक्तिकता, (2) स्वातंत्र्य चेतना, (3) रहस्यवादिता, (4) शैलीगत वैशिष्ट्य, (5) अस्पष्टता

आगे चलकर, विभिन्न विद्वानों ने ‘छायावाद’ शब्द की अलग-अलग व्याख्या की। कई विद्वानों ने यही संकेत दिया कि छायावाद का संबंध किसी प्रतीकात्मक या रहस्यात्मक काव्य से है। यह संकेत मुकुटधर पांडेय की व्याख्या में भी था और आगे भी बना रहा। उदाहरण के लिए, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने छायावाद की परिभाषा इस अनोखे अंदाज में की-  
*“छायावाद से लोगों का क्या मतलब है, कुछ समझ में नहीं आता। शायद उनका मतलब है कि किसी कविता के भावों की छाया यदि कहीं अन्यत्र जाकर पड़े तो उसे छायावादी कविता कहना चाहिए।”*

आचार्य शुक्ल भी छायावाद के प्रति सकारात्मक नहीं थे। उन्हें लगता था कि स्वच्छंदतावाद की स्वच्छ व प्रांजल धारा के विकास को छायावादी कवियों ने अपने रहस्यवादी व प्रतीकवादी काव्य के माध्यम से रोक दिया। उन्होंने छायावाद की व्याख्या रहस्यवाद व प्रतीकवाद के रूप में ही की और प्रायः उसे हिन्दी साहित्य की नकारात्मक प्रवृत्ति के रूप में देखा।

शुक्ल जी के बाद कुछ समीक्षकों ने छायावाद को सकारात्मक नजरिए से देखने की कोशिश की। सबसे पहले आचार्य शांतिप्रिय द्विवेदी ने छायावाद को गांधीवाद के साहित्यिक संस्करण के रूप में पहचान दिलाने की कोशिश की।

## 7.1 परिचय

1936-1943 तक हिन्दी कविता के इतिहास में एक विशेष आंदोलन चला जिसे प्रगतिवाद के नाम से जाना जाता है। इसकी शुरुआत 1936 से इसलिए मानी जाती है क्योंकि इसी वर्ष 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना हुई थी और लखनऊ में प्रेमचंद की अध्यक्षता में उसका पहला सम्मेलन हुआ था।

ई.एम. फोस्टर ने 1935 में पेरिस में 'प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन' की स्थापना की थी। 1936 में उसी की एक शाखा के रूप में भारत में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना हुई। इसकी स्थापना में सज्जाद ज़हीर और मुल्कराज आनंद की विशेष भूमिका थी।

शुरू में प्रगतिशील लेखक संघ का ढाँचा काफी उदार था और प्रगतिशील विचार रखने वाले सभी लोग, चाहे उनकी विचारधारा कोई भी हो, उससे जुड़ते थे। कुछ ही समय में स्पष्ट हो गया कि यह मंच मार्क्सवादी विचारधारा के समर्थन को प्रगतिशील होने की शर्त मानता था। यह धारणा स्पष्ट होने के बाद इस संगठन में वही रचनाकार बचे जो मार्क्सवाद में निष्ठा रखते थे। शेष रचनाकारों ने स्वयं को इस मंच से अलग कर लिया और दावा किया कि प्रगतिशीलता और प्रगतिवाद दो अलग धारणाएँ हैं।

कुल मिलाकर, वर्तमान में प्रगतिवाद से आशय उन कवियों के आंदोलन से है जो मार्क्सवादी विचारधारा के आधार पर अपनी विषय-वस्तु और रचना प्रक्रिया निर्धारित करते हैं। ऐसे कवियों में केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, गजानन माधव मुक्तिबोध, केदारनाथ सिंह, नागार्जुन, रामविलास शर्मा आदि प्रमुख हैं। दिनकर भी काफी हद तक प्रगतिवाद की धारा में शामिल होते हैं, हालाँकि वे सिर्फ मार्क्सवाद के प्रति प्रतिबद्ध न होकर कई विचारधाराओं में संतुलन साधने की कोशिश करते हैं।

## 7.2 पृष्ठभूमि व परिस्थितियाँ

कुछ लोग आरोप लगाते हैं कि प्रगतिवाद एक विदेशी विचारधारा पर टिका हुआ आंदोलन है और इसका भारतीय परिस्थितियों से कोई संबंध नहीं है।

वस्तुतः यह आरोप निराधार है। अगर हम ध्यान से देखें तो 1930 के दशक में भारतीय स्वाधीनता संग्राम को गांधीवाद के बाद जो विचारधारा सर्वाधिक प्रभावित कर रही थी, वह समाजवाद ही थी। गांधी जी के दो बड़े आंदोलन (असहयोग तथा सविनय अवज्ञा) विफल हो चुके थे और जनता वैकल्पिक विचारों के प्रति सकारात्मक रुझान रख रही थी। जवाहरलाल नेहरू के अलावा सुभाष चंद्र बोस, जयप्रकाश नारायण और राममनोहर लोहिया जैसे कई समाजवादी नेता जनता के बीच लोकप्रिय होने लगे थे। क्रांतिकारी आंदोलन का दूसरा चरण 1928-1931 के दौरान संपन्न हुआ था जिसमें शामिल भगतसिंह और चंद्रशेखर आज़ाद जैसे क्रांतिकारी मार्क्सवादी विचारों के ही समर्थक थे।

1917 की सोवियत क्रांति ने पूरी दुनिया पर प्रभाव डाला था। भारत में पूंजीवाद का विकास हो रहा था और ट्रेड यूनियन आंदोलन भी जोर पकड़ रहा था। लेनिन घोषणा कर चुका था कि पराधीन देशों में साम्राज्यवाद ही पूंजीवाद का चरम रूप है और उसके खिलाफ संघर्ष ही समाजवादी संघर्ष है। 1929 में अमेरिका में आई व्यापक आर्थिक मंदी में दुनिया भर में पूंजीवाद के प्रति अविश्वास पैदा कर दिया था। ये सारी स्थितियाँ भारतीय बुद्धिजीवियों को भी प्रभावित कर रही थीं।

1930 के दशक में भारत में किसान और मजदूर आंदोलन सघन हो गए थे। आदिवासियों के आंदोलन भी जोर पकड़ रहे थे। महिलाएँ भी अपने घरों से निकलकर अपनी आजादी का रास्ता ढूँढ रही थीं। समाज के सभी वंचित वर्गों को आजादी

## 8.1 परिचय

आधुनिक हिन्दी कविता के इतिहास में सन् 1943 में अज्ञेय द्वारा संपादित 'तारसप्तक' के प्रकाशन के साथ ही एक नया मोड़ उपस्थित होता है, जिसे 'प्रयोगवाद' कहा गया है। इस संकलन में सात कवियों की कविताएँ शामिल थीं— रामविलास शर्मा, मुक्तिबोध, अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, नेमिचंद्र जैन, प्रभाकर माचवे तथा भारतभूषण अग्रवाल। सामान्यतः माना जाता है कि प्रयोगवाद प्रगतिवाद के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया के तौर पर शुरू हुआ आंदोलन था, पर यह पर्याप्त सच नहीं है। अगर हम इन सात कवियों के नामों पर गौर करें तो पाएंगे कि इनमें कम से कम तीन-चार ऐसे थे जिनकी निष्ठा मार्क्सवाद के प्रति रही थी, जैसे— रामविलास शर्मा, मुक्तिबोध, नेमिचंद्र जैन तथा भारतभूषण अग्रवाल। इन कवियों के प्रयोगवाद में शामिल होने का मतलब यही था कि अज्ञेय की तरह ये कवि भी विचारधारा के सत्य को अंतिम मानने को तैयार नहीं थे और अपने स्तर पर अपने सत्य की तलाश करने के इच्छुक थे। अपने सत्य को खोजने की प्रक्रिया प्रयोगशीलता की मांग करती है और इस प्रयोगशीलता के कारण ही इस आंदोलन को प्रयोगवाद कहा गया। अज्ञेय को 'प्रयोगवाद' नाम पसंद नहीं था क्योंकि 'प्रयोगशील' और 'प्रयोगवाद' समानार्थक नहीं हैं। प्रयोगशीलता से भाव निकलता है कि ये कवि प्रयोग करके सत्य की तलाश करना चाहते हैं जबकि प्रयोगवाद से यह भाव निकलता है कि प्रयोग करना ही इन कवियों के जीवन का उद्देश्य है। इसके बावजूद, प्रचलित हो जाने के कारण आज भी इस युग को प्रयोगवाद ही कहा जाता है, प्रयोगशीलता का युग नहीं।

प्रयोगवाद कुछ मायनों में छायावाद से भी अलग है और प्रगतिवाद से भी। यह छायावादी कविता की रोमानियत और वायवीयता तथा प्रगतिवादी कविता की वैचारिक प्रतिबद्धता के विरोध में खड़ा होकर 'स्वानुभूति की प्रामाणिकता' को रचना के केंद्र में स्थापित करने का आग्रह करता है। शिल्प के स्तर पर यह छायावाद की ठहरी हुई अभिव्यंजना प्रणाली तथा प्रगतिवाद की अभिधात्मकता व सपाटबयानी का अतिक्रमण करता है। इसी नई दृष्टि को अज्ञेय ने 'प्रयोगशीलता' कहा था।

प्रयोगवाद में प्रयुक्त 'प्रयोग' शब्द नए जीवन सत्यों को पाने की बेचैनी का द्योतक है। अज्ञेय ने तारसप्तक की भूमिका में प्रयोगशील शब्द का प्रयोग किया है और इसे जीवन-सत्यों के अन्वेषण का माध्यम माना है। अतः अज्ञेय के अनुसार "प्रयोग अपने आप में साध्य नहीं है, वह साधन है और दोहरा साधन है; क्योंकि एक तो वह उस सत्य को जानने का साधन है जिसे कवि प्रेषित करता है, दूसरे वह उस प्रेषण की क्रिया को और उसके साधनों को जानने का भी साधन है।" दूसरे सप्तक की भूमिका में 'प्रयोगवाद' नामकरण का विरोध करते हुए अज्ञेय ने लिखा है कि प्रयोग का कोई वाद नहीं होता। किसी को प्रयोगवादी कहना उतना ही निरर्थक है जितना कवितावादी कहना। अतः 'प्रयोगशील' होने और 'प्रयोगवादी' होने में फर्क है। प्रयोगवाद वस्तुतः प्रयोगशीलता का पक्षधर है।

## 8.2 प्रयोगवाद के प्रेरणा-स्रोत

प्रयोगवाद के संबंध में प्रसिद्ध आक्षेप है कि यह आंदोलन भारतीय समाज की परिस्थितियों से पैदा नहीं हुआ है बल्कि पश्चिमी साहित्य के प्रभावों पर आधारित है। यह आरोप मुख्यतः प्रगतिवादियों या मार्क्सवादियों ने लगाया है। उनका यह भी कहना है कि शीतयुद्ध के दौर में प्रयोगवादी कविता अमेरिकी पक्ष का प्रतिनिधित्व करती है।

सच यह है कि प्रयोगवाद के उद्भव के मूल में कुछ योगदान भारतीय परिस्थितियों का है तो कुछ पश्चिम के वैचारिक प्रभावों का। पश्चिम का वैचारिक प्रभाव तो प्रगतिवाद पर भी था क्योंकि मार्क्सवाद पश्चिम से ही आया है, किंतु प्रगतिवाद के आगमन को तत्कालीन स्वाधीनता संग्राम की बहुत सी घटनाओं से सीधे तौर पर जोड़ना संभव था। प्रयोगवाद की

## 9.1 परिचय

### नयी कविता का आरंभ तथा अर्थ

नई कविता छोटे दशक की कविता है। अज्ञेय ने 1951 में 'दूसरा सप्तक' प्रकाशित किया और यहीं से 'प्रयोगवाद' 'नई कविता' में रूपांतरित हो गया। कुछ इतिहासकारों की राय है कि 1954 ई. में जगदीश गुप्त की पत्रिका 'नयी कविता' के प्रकाशन से नयी कविता आंदोलन का आरंभ हुआ।

यह विवाद का विषय है कि नयी कविता का अर्थ क्या है एवं नयी कविता वस्तुतः किस अर्थ में तथा कितनी नयी है? यूँ तो हर युग की कविता पिछले युग की तुलना में नयी ही होती है। किंतु, यहाँ नये का अर्थ अद्यतन से नहीं है। दरअसल, इस आंदोलन में जो कविता लिखी गई, वह अपनी अन्तर्वस्तु में पहले की परंपरा से काफी अलग है। इस नएपन की व्याख्या भिन्न-भिन्न प्रकार से की गई है।

नयी कविता के प्रमुख कवि हैं- अज्ञेय, भवानीप्रसाद मिश्र, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, विजयदेव नारायण साही, धर्मवीर भारती, श्रीकान्त वर्मा, लक्ष्मीकांत वर्मा, मुक्तिबोध, शमशेर बहादुर सिंह, गिरिजाकुमार माथुर, अशोक वाजपेयी इत्यादि।

### नयी कविता के दौर की परिस्थितियाँ

भारत में स्वतंत्रता के बाद आर्थिक विषमता कम नहीं हुई। देश के नेतृत्व ने जनता की समस्याओं पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया। इसके परिणामस्वरूप देश में असन्तोष, मोहभंग और निराशा की स्थिति बनी क्योंकि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी लोगों के सपने पूरे नहीं हुए। इसी पृष्ठभूमि पर नयी कविता का उदय हुआ। आज़ादी के बाद जो भी विकास हुआ, उसमें मशीनीकरण और शहरीकरण पर बल दिया गया जिसने समाज में यात्रिकता, अकेलेपन व आत्मनिर्वासन को उत्पन्न किया। इस पूरे दौर में मनुष्य का महत्त्व कम होता गया जिसे अस्तित्ववादी विचारधारा के प्रभाव में लघुमानववाद कहा गया। इन सारी परिस्थितियों का गंभीर प्रभाव नयी कविता पर पड़ा।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विश्व पूंजीवादी और मार्क्सवादी दो खेमों में बँट गया। दोनों गुटों में शीतयुद्ध की स्थिति बन गई। इस दौर में मार्क्सवाद के खिलाफ 'व्यक्ति की स्वतंत्रता' का नारा बुलन्द किया गया। इस बात पर ध्यान आकर्षित किया गया कि मार्क्सवाद सभी प्रकार की स्वतंत्रताओं का अपहरण करता है एवं समाजवादी देशों में बुद्धिजीवियों, लेखकों एवं जनता को स्वतंत्रता प्राप्त नहीं है। नयी कविता पर मुख्यतः अस्तित्ववादी दर्शन का प्रभाव पड़ा हालांकि इस पर मार्क्सवाद का प्रभाव भी रहा है। इस तरह नयी कविता की दो धारायें बनीं- पहली अस्तित्ववाद और व्यक्तिवादी आधुनिकतावाद से जबकि दूसरी मार्क्सवाद से प्रभावित थी। पहली धारा का नेतृत्व अज्ञेय के हाथों में था जबकि दूसरी का नेतृत्व मुक्तिबोध के हाथों में।

### नई कविता का नामकरण

नई कविता के नामकरण के संबंध में विवाद यह है कि इसमें 'नई' का अर्थ क्या है- यह 'विशेषण' है या 'संज्ञा' का ही 'अंश' है? यदि 'नई' शब्द को विशेषण मानें तो इसका अर्थ होगा कि नई कविता पहले की सारी कविताओं से अलग है। किन्तु, इसमें समस्या यह है कि यह विशेषता सिर्फ नई कविता पर लागू नहीं होती, हर काव्यान्दोलन पर लागू होती है



## 10.1 उपन्यास

उपन्यास आधुनिक गद्य की एक कथात्मक विधा है जिसका जन्म 18वीं शताब्दी में पश्चिम में हुआ। यदि उपन्यास शब्द का विखंडन करें तो इसके दो हिस्से होते हैं- 'उप' अर्थात् निकट तथा 'न्यास' अर्थात् थाती। इस आधार पर उपन्यास का अर्थ है- वह रचना जो सामाजिक जीवन के अत्यंत निकट हो। सामाजिक जीवन के निकट होने के कारण ही उपन्यास को 'आधुनिक युग का महाकाव्य' भी कहते हैं।

### उपन्यास और आख्यायिका में अंतर

कुछ लोग मानते हैं कि उपन्यास आधुनिक विधा नहीं है बल्कि प्राचीन काल से ही चली आ रही है। उनका दावा है कि आज का उपन्यास संस्कृत साहित्य में मिलने वाली आख्यायिकाओं का ही परिवर्तित रूप है। तर्क यह है कि आख्यायिकाएँ गद्यात्मक और कथात्मक होने के साथ-साथ आकार की दृष्टि से भी उपन्यासों जैसी ही थीं।

किंतु, वर्तमान में यह मत मान्य नहीं है। आजकल माना जाता है कि उपन्यास एक आधुनिक विधा है जिसका जन्म पूंजीवाद और औद्योगिक क्रांति की कोख से जन्मे मध्यवर्ग के उदय के कारण हुआ। यह ध्यान रखना जरूरी है कि आख्यायिका बाहरी ढाँचे में चाहे उपन्यास के नजदीक हो, रचना-दृष्टि के स्तर पर भिन्न है। आख्यायिका आदर्शवादी रचना होती है जिसमें अलौकिक मान्यताओं, नैतिक उपदेशों तथा भावनापूर्ण कल्पनाओं की सघन उपस्थिति होती है। इसके विपरीत, उपन्यास अनिवार्यतः यथार्थवाद से संबंधित होता है क्योंकि वह इहलौकिक जीवन, यथार्थ घटनाओं तथा इतिहास के तथ्यों से प्रभावित होता है।

### पूंजीवाद, मध्यवर्ग तथा उपन्यास का जन्म

मध्यकाल का समाज अपनी प्रकृति में सरल था जिसमें सभी लोग ग्रामीण व छोटे समुदायों में रहते थे। उनकी जीवनचर्या, नैतिक मूल्यों तथा दृष्टिकोण में गहरी समरूपता होती थी। ऐसे समाज में लोक-गीत, कहानियों और लोक-नाट्य जैसी विधाएँ प्रचलित थीं। महाकाव्य इस दौर की सर्वोच्च विधा मानी जाती थी जो न सिर्फ सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेश का समग्र चित्रण करती थी बल्कि जो समाज को नैतिक सहमति व नैतिक उत्कर्ष से भी जोड़ती थी।

आधुनिक काल के आते ही स्थितियों में आमूल-चूल परिवर्तन हुआ। विज्ञान तथा वैज्ञानिक क्रांति ने मनुष्य की अलौकिक आस्थाओं को कमजोर बना दिया। औद्योगीकरण तथा पूंजीवाद की वजह से तेजी से नगरों का विकास हुआ और गाँवों के असंख्य लोग रोजगार की तलाश में शहर पहुँचे। यहीं से मध्यवर्ग का विकास हुआ। यह वर्ग ना तो मालिक की तरह अमीर था, न ही मजदूरों की तरह गरीब और दुर्दशाग्रस्त। इसका काम मालिक की ओर से कारखाने की व्यवस्था का संचालन करना था। यह वर्ग अपनी ग्रामीण जड़ों से कट चुका था और शहर में भावनात्मक अकेलेपन तथा मनोरंजन के अभाव से पीड़ित था। इस वर्ग के अकेलेपन को दूर करने के लिए किसी नई विधा की जरूरत थी- जिसमें कल्पनाएँ नहीं यथार्थ हो, जिसका आस्वादन अकेले किया जा सके। चूँकि प्रिंटिंग प्रेस का आविष्कार हो चुका था और यह वर्ग शिक्षित होने के कारण पाठ्य विधा का आस्वादन कर सकता था, इसलिए इसके खालीपन को भरने के लिए उपन्यास का जन्म हुआ।

भारत के इतिहास में भी उपन्यास का जन्म प्रायः इसी प्रकार हुआ। भारत में अंग्रेजों ने जो नई प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित की, नए ढंग की शिक्षा का प्रसार किया, नई तरह की अर्थव्यवस्था शुरू की, उन सबसे मध्य वर्ग का विस्तार हुआ। इसी का परिणाम है कि हिन्दी के शुरुआती उपन्यासों जैसे 'देवरानी जेठानी की कहानी', 'भाग्यवती', 'परीक्षागुरु' आदि की कथावस्तु मध्यवर्गीय जीवन पर ही आधारित है। आगे चलकर, उच्च तथा निम्न वर्ग भी उपन्यासों की विषय-वस्तु बने किंतु मध्यवर्ग की प्रमुखता हर युग में देखी जा सकती है।

कहानी कथात्मक गद्य की एक प्रमुख विधा है। जिस रचना में कथा का ढाँचा हो, कुछ घटनाएँ तथा चरित्र हों तथा जो आकार में लघु हो, सामान्यतः उसे ही कहानी कह दिया जाता है।

## 11.1 कहानी का परिचय

कहानी विश्व साहित्य की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है जो दुनिया के हर समाज में सभ्यता के आरंभिक काल से ही किसी न किसी रूप में विद्यमान है। मानवीय संस्कृति को निर्मित व संरक्षित करने में जिन साहित्यिक विधाओं ने सर्वाधिक योगदान दिया है, उनमें गीतों के अतिरिक्त कहानियों को भी महत्वपूर्ण माना जाता है।

एक दृष्टि से हमारे समाज में कहानियों की परंपरा अत्यंत प्राचीन काल से ही दिखाई पड़ती है। उदाहरणार्थ 'जातक कथाएँ', 'पंचतंत्र की कथाएँ', 'हितोपदेश' तथा 'कथासरित्सागर' जैसी रचनाएँ इसी प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करती हैं। किन्तु, वर्तमान काल में जब कहानी की बात की जाती है तो वह पारंपरिक कथाओं से अलग मानी जाती है। कहानी और कथा में मूल अंतर न तो आकार का है, न भाषा का और न ही उनमें विद्यमान तत्वों का। इनमें अंतर दृष्टिकोण का है। जहाँ कथाओं में आदर्शवादी और नैतिकतावादी दृष्टिकोण केन्द्र में होता है, वहीं आज की कहानी में यथार्थवादी दृष्टिकोण की प्रमुखता दिखाई पड़ती है।

पारंपरिक कथाओं का मूल उद्देश्य नैतिक शिक्षा प्रदान करना होता था। इसलिए हर कथा के अंत में बताया जाता था कि इससे क्या शिक्षा मिलती है? उस शिक्षा को ध्यान में रखते हुए ही कथाकार घटनाओं व पात्रों का जाल बुनता था। वह घटनाओं को एक निश्चित क्रम में इस प्रकार रखता था कि कथा के अंतिम बिन्दु पर वह नैतिक शिक्षा नाटकीय प्रभाव के साथ श्रोता या पाठक के समक्ष मुखर हो जाए। इस प्रकार की कथाओं में देश-काल की प्रामाणिकता का दबाव कम होता था और अविश्वसनीय तथा काल्पनिक घटनाओं को भी पर्याप्त महत्व मिलता था।

वर्तमान साहित्य में जब कहानी की चर्चा की जाती है तो उसका संदर्भ अंग्रेजी के 'Short Story Movement' से प्रभावित कहानी परंपरा से है। अंग्रेजों के शासन के दौर में जब अंग्रेजी संस्कृति व साहित्य से भारतीय समाज का परिचय हुआ तो वहाँ की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ बंगाल से होते हुए हिन्दी जगत में पहुँचीं। इसके परिणामतः हिन्दी में भी पश्चिमी यथार्थवाद से प्रभावित कहानियाँ लिखी जाने लगीं। इन कहानियों की विशेषता यह थी कि इनमें यथार्थ जीवन के किसी पक्ष का उद्घाटन किया जाता था और आदर्शों व कल्पनाओं से यथासंभव दूरी रखी जाती थी।

## 11.2 कहानी और उपन्यास में तुलना

कथात्मक गद्य के अंतर्गत दो प्रमुख विधाएँ शामिल हैं- कहानी और उपन्यास। सबसे पहले, हमें इनकी समानताओं तथा अंतरों को समझना चाहिए।

दोनों विधाओं में एक ओर बहुत सारी समानताएँ हैं तो दूसरी ओर अनेक अंतर भी हैं। समानताएँ प्रमुखतः ये हैं कि दोनों गद्य विधाएँ हैं और दोनों में ही कथात्मक ढाँचा लिया जाता है। इतना ही नहीं, जो छः तत्व (कथानक, चरित्र, वातावरण, उद्देश्य, भाषा-शैली तथा संवाद) उपन्यास के माने जाते हैं, वही तत्व कहानी के भी माने गए हैं।

इन समानताओं के आधार पर कुछ विद्वान मान लेते हैं कि कहानी व उपन्यास में सिर्फ आकार का अंतर है अर्थात् कहानी को लघु उपन्यास और उपन्यास को लंबी कहानी कहा जा सकता है। किन्तु, वस्तुतः ये दोनों विधाएँ मूल प्रकृति में भिन्न हैं। बाबू गुलाब राय तथा प्रेमचंद जैसे लेखकों ने स्पष्ट तौर पर दोनों विधाओं को अलग बताया है। बाबू गुलाब राय ने तो ऐसी समानता करने वालों पर व्यंग्य करते हुए कहा है- "कहानी को लघु उपन्यास कहना वैसा ही होगा जैसे चौपाया होने की समानता के आधार पर मेंढक को छोटा बैल और बैल को बड़ा मेंढक कहें।"



## 12.1 हिन्दी नाटक विधा का आरंभ

हिन्दी नाट्य-साहित्य का आरंभ आधुनिक काल से होता है। हिन्दी से पहले संस्कृत और प्राकृत में समृद्ध नाट्य-परंपरा थी लेकिन हिन्दी नाटकों का विकास आधुनिक युग में ही संभव हो सका। मध्यकाल में रासलीला, रामलीला, नाटक आदि का उदय होने से जननाटकों का प्रचलन बढ़ा। ये लोक-नाटक मनोरंजन के प्रमुख साधन थे।

17वीं 18वीं शताब्दी के लगभग कुछ ऐसे नाटक भी लिखे गये जो ब्रजभाषा में थे जैसे प्राणचंद चौहान का 'रामायण महानाटक' व विश्वनाथ सिंह का 'आनंद रघुनंदन'। इनमें 'आनंद रघुनंदन' को हिन्दी साहित्य का प्रथम मौलिक नाटक माना जाता है। कथोपकथन, अंक विभाजन, रंग संकेत आदि के कारण आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसे हिन्दी का प्रथम मौलिक नाटक माना है।

इस दौर के सभी नाटकों पर संस्कृत नाट्य साहित्य की छाप नजर आती है। इनकी विषयवस्तु धार्मिक व पौराणिक है। इनके संवाद पद्यात्मक हैं। शृंगार इनकी मूल प्रवृत्ति है।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में पारसी थियेटर कंपनियाँ अस्तित्व में आ चुकी थीं। इनका प्रमुख उद्देश्य विभिन्न नाटकों द्वारा जनता का मनोरंजन करना था। इनके नाटकों के कथानक कभी रामायण-महाभारत से, कभी पारसी प्रेमकथाओं से और कभी अंग्रेजी नाटकों 'हेमलेट', 'रोमियो जूलियट' आदि से लिये जाते थे। इनमें बचकाने नृत्य, स्थान-स्थान पर गीत, शोरो-शायरी, गुज़ल आदि का समावेश रहता था। ऐसा ही नाटक अमानत द्वारा लिखित 'इंदरसभा' है। 'ऑपेरा' के समान इस नाटक का अधिकांश भाग गीतों से भरा है। बीच-बीच में संवाद हैं। ऐसे नाटकों द्वारा उत्पन्न कलाहीन, असंस्कृत वातावरण से क्षुब्ध होकर भारतेन्दु ने हिन्दी नाटक को साहित्यिक, कलात्मक रूप देने का प्रयास किया। उनके द्वारा स्थापित इस परम्परा को जयशंकर प्रसाद ने नया स्वरूप व नयी दिशा प्रदान की। आगे चलकर, मोहन राकेश जैसे नाटककारों ने इस परंपरा को आधुनिक यथार्थ से गहराई से जोड़ा।

## 12.2 हिन्दी नाट्य साहित्य का विकास

जिस तरह हिन्दी कहानी व उपन्यास में प्रेमचंद का स्थान केंद्रीय महत्त्व का है, उसी तरह हिन्दी नाटकों में जयशंकर प्रसाद का है। उन्हें केंद्र में रखकर हिन्दी नाट्य-साहित्य को हम विभिन्न युगों में बाँट सकते हैं-

- प्रसाद पूर्व हिन्दी नाटक
- प्रसाद युगीन हिन्दी नाटक
- प्रसादोत्तर स्वतंत्रता पूर्व हिन्दी नाटक
- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक

### प्रसाद पूर्व हिन्दी नाटक

इस काल के साहित्य को दो उप-खंडों में विभाजित किया जा सकता है- (क) भारतेन्दुयुगीन नाटक, (ख) द्विवेदीयुगीन नाटक।

#### (क) भारतेन्दुयुगीन नाटक : (1850-1900 ई.)

खड़ी बोली में प्रथम आधुनिक नाटक लिखने का श्रेय भारतेन्दु को है। भारतेन्दु का युग नाट्य साहित्य का प्रथम चरण है। यह दौर सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक परिवर्तनों का दौर था। एक वर्ग पाश्चात्य संस्कृति का समर्थन कर रहा था तो दूसरा विरोध। अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव पड़ रहा था। ऐसे में नयी मान्यतायें, दृष्टिकोण और सृजनात्मक दिशा देने की आवश्यकता थी। भारतेन्दु ने यही किया है। भारतेन्दु के नाटकों का मूल उद्देश्य मनोरंजन के साथ जनसामान्य को जागृत करना तथा उनमें आत्मविश्वास जगाना था। प्राचीन संस्कृति के प्रति प्रेम जगाने, मानवीय मूल्यों के प्रति आस्था बनाए रखने तथा

साहित्यिक दृष्टि से हिन्दी में निबंध का उद्भव और विकास आधुनिक युग की देन है। राष्ट्रीय जागरण, देश प्रेम, व्यक्ति-स्वातंत्र्य, अंतर्राष्ट्रीयता, वैज्ञानिक मशीनों का प्रयोग (औद्योगिक क्रांति), आवश्यकताओं की वृद्धि, गद्य का प्रचलन, मुद्रणकला का प्रचार, समाचार-पत्रों का प्रकाशन और अंग्रेज़ी साहित्य का संपर्क आदि अनेक कारणों से साहित्य के अनेक रूपों के साथ निबंध रूप का भी आविर्भाव हुआ। इन सब कारणों से निबंध रचना को विशेष प्रोत्साहन मिला क्योंकि इस विधा के माध्यम से लेखक अपनी बात पाठकों तक सीधे पहुँचा सकता था। हिन्दी निबंध की शुरुआत उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से मानी जाती है। निबंध की आरंभिक परंपरा में भारतेंदु युग के लेखकों का विशेष महत्त्व है क्योंकि उन्होंने विषय, शैली और भाषा तीनों स्तरों पर निबंधों में नए प्रयोग किए किंतु निबंधों को प्रौढ़ रूप द्विवेदी युग में ही प्राप्त हुआ। इस दौर में जहाँ एक ओर भाषा का मानक रूप निर्मित हुआ, वहीं दूसरी ओर चिंतन में प्रौढ़ता और शैली में परिष्कार भी हुआ। हिन्दी निबंध के विकास में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का केंद्रीय महत्त्व रहा है। उन्होंने विचार, शैली और भाषा तीनों स्तरों पर हिन्दी निबंध को उच्च स्तरीय स्वरूप प्रदान किया। जिस प्रकार हिन्दी नाटक और कविता के क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद का विशेष महत्त्व रहा है, उसी प्रकार हिन्दी निबंध के क्षेत्र में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का विशेष महत्त्व है। इसलिए हिन्दी निबंध के विकास के केंद्र में आचार्य रामचंद्र शुक्ल को मानते हुए हम उसे तीन युगों में बाँट सकते हैं—

- शुक्ल-पूर्व युग (1850 से 1920 ई.)
- शुक्ल युग (1920 से 1940 ई.)
- शुक्लोत्तर युग (1940 से आज तक)

### शुक्ल-पूर्व युग

हिन्दी नाटक की भांति हिन्दी निबंध लेखन की शुरुआत भारतेंदु युग से हुई। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 1868 ई. में 'कवि वचन सुधा' का प्रकाशन आरंभ किया। इसके प्रकाशन से हिन्दी लेखन विशेष रूप से प्रभावित हुआ। भारतेंदु युग के अन्य लेखकों ने भी कई पत्र-पत्रिकाएँ शुरू कीं। इनमें प्रताप नारायण मिश्र द्वारा प्रकाशित 'ब्राह्मण', बालकृष्ण भट्ट का 'हिन्दी प्रदीप', बदरीनारायण चौधरी प्रेमधन द्वारा प्रकाशित 'आनंद कादंबिनी' आदि प्रमुख हैं। उस युग में लिखे गए निबंध प्रायः इन्हीं पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते थे।

### **हिन्दी का पहला निबंधकार**

हिन्दी का पहला निबंधकार कौन है, इसके संबंध में हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों में मतभेद है। कोई सदासुख लाल के 'सुरासुर निर्णय' को हिन्दी का पहला निबंध मानता है तो कोई राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिंद' की रचना 'राजा भोज का सपना' को। अधिकतर विद्वान एकमत होकर बालकृष्ण भट्ट को हिन्दी निबंध के जनक के रूप में स्वीकार करते हैं। लेकिन आचार्य शुक्ल ने हिन्दी निबंधों की परंपरा का सूत्रपात भारतेंदु युग से स्वीकार किया जो सर्वथा उचित भी है।

### **भारतेंदुयुग**

भारतेंदुयुग के प्रमुख निबंधकारों में भारतेंदु हरिश्चंद्र, प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन', लाला श्रीनिवासदास, अबिकादत्त व्यास, राधा चरण गोस्वामी आदि हैं।

### **भारतेंदु हरिश्चंद्र**

भारतेंदु हरिश्चंद्र साहित्य में युग प्रवर्तक माने जाते हैं। उन्होंने इतिहास, पुराण, धर्म, समाज-सुधार, जीवनी, यात्रा वर्णन, भाषा आदि विषयों पर निबंध लिखे। इनके निबंधों की शैली व्यंग्यात्मक, विचारात्मक, भावात्मक, आत्मव्यंजक, वर्णनात्मक

### 14.1 सैद्धांतिक और व्यावहारिक आलोचना

आलोचना का अर्थ किसी कृति के मूल्यांकन से है। मूल्यांकन की प्रक्रिया अनिवार्यतः दो पक्षों पर आधारित होती है-

- ऐसे प्रतिमानों का निर्माण जिनके आधार पर किसी कृति का मूल्यांकन किया जा सके; तथा
- उन प्रतिमानों के आधार पर रचना का वास्तविक मूल्यांकन।

इन दोनों पक्षों को क्रमशः सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक समीक्षा के नाम से जाना जाता है। हर विचारधारा के समीक्षक पहले अपना सैद्धांतिक पक्ष निर्धारित करते हैं और फिर उन सिद्धांतों के आलोक में रचनाओं का विश्लेषण तथा मूल्यांकन करते हैं। इसलिए, हर आलोचक और हर समीक्षा-धारा के भीतर ये दोनों समीक्षाएँ उपस्थित होती हैं।

आमतौर पर सैद्धांतिक समीक्षा से व्यावहारिक समीक्षा तय होती है क्योंकि सैद्धांतिक समीक्षा के आलोक में ही रचना की व्यावहारिक समीक्षा की जाती है। उदाहरण के लिए, डॉ. नगेन्द्र एक रसवादी समीक्षक हैं और यह सैद्धांतिक पक्ष उनकी कई व्यावहारिक समीक्षाओं जैसे 'कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ' में देखा जा सकता है। कभी-कभी इसका विपरीत भी सत्य होता है अर्थात् व्यावहारिक समीक्षा किसी नई सैद्धांतिक समीक्षा को जन्म देती है।

ऐसा तब होता है जब सामाजिक राजनीतिक परिवर्तनों के कारण साहित्य की अंतर्वस्तु और बाहरी कलेवर को बदल जाता है किन्तु आलोचना के सैद्धांतिक प्रतिमान नहीं बदल पाते। ऐसी स्थिति में कोई आलोचक किसी रचना की व्यावहारिक समीक्षा के माध्यम से नई सैद्धांतिक समीक्षा गढ़ देता है। उदाहरण के लिए, भारतेन्दु हरिश्चंद्र और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लोकमंगल को केंद्र में रखकर कई व्यावहारिक समीक्षाएँ लिखीं जिन्होंने रीतिवादी समीक्षा के विरुद्ध नई सैद्धांतिक समीक्षा की नींव रखी। इसी नींव के आधार पर शुक्ल जी ने रस की लोकमंगलवादी धारणा को सैद्धांतिक रूप प्रदान किया।

कुछ आलोचक सिर्फ सैद्धांतिक आलोचना तक सीमित रहते हैं, जैसे भरतमुनि या अभिनवगुप्त जैसे पारंपरिक काव्यशास्त्रीय आचार्य। दूसरी ओर, कुछ आलोचक ऐसे भी हैं जो प्रचलित काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों में से अपनी रुचियों के अनुसार कुछ सिद्धांत चुन लेते हैं और अपनी पूरी ऊर्जा सिर्फ व्यावहारिक समीक्षा में लगाते हैं। मलयज, शिवदान सिंह चौहान तथा नंदकिशोर नवल जैसे आधुनिक समीक्षकों को मोटे तौर पर इस वर्ग में रखा जा सकता है। अधिकांश समीक्षक कोशिश करते हैं कि वे समीक्षा के इन दोनों क्षेत्रों में अपनी लेखनी चलाएँ। आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, डॉ. नगेन्द्र, डॉ. रामविलास शर्मा और डॉ. नामवर सिंह इसी वर्ग के समीक्षक हैं। अगर आचार्य शुक्ल का उदाहरण लें तो 'कविता क्या है', 'काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था' आदि निबंध उनकी सैद्धांतिक आलोचना के प्रमाण हैं जबकि तुलसी, सूर, जायसी, कबीर और पंत जैसे कवियों का मूल्यांकन उनकी व्यावहारिक समीक्षा में शामिल हैं। इसी प्रकार, 'कविता के नए प्रतिमान' डॉ. नामवर सिंह की सैद्धांतिक समीक्षा का उदाहरण है तो उनके द्वारा मुक्तिबोध और नागार्जुन जैसे कवियों का मूल्यांकन व्यावहारिक समीक्षा का उदाहरण है।

### 14.2 हिन्दी आलोचना का इतिहास

हिन्दी आलोचना के इतिहास को समझने का मूल अर्थ यही है कि हम सभी आलोचकों तथा समीक्षा-धाराओं के सैद्धांतिक मानदंडों तथा उनके द्वारा की गई व्यावहारिक समीक्षाओं को समझें।

आचार्य शुक्ल को हिन्दी आलोचना के इतिहास का केंद्रीय व्यक्ति माना जाता है। उनकी उपस्थिति को आधार मानते हुए हिन्दी आलोचना के संपूर्ण इतिहास को तीन भागों में बाँटा जाता है-

- शुक्ल-पूर्व समीक्षा
- शुक्लयुगीन समीक्षा
- शुक्लान्तर समीक्षा

## 15.1 हिन्दी रेखाचित्र : उद्भव और विकास

साहित्य की विधा के रूप में रेखाचित्र एक आधुनिक विधा है। इस पर चित्रकला का गहरा प्रभाव माना जाता है। रेखाओं से जीवन के विविध रूपों को आकार देने की प्रणाली की विशेषता को अपनाकर शब्दों द्वारा जीवन के विविध रूपों को साकार करने वाले शब्द-चित्रों को रेखाचित्र की संज्ञा प्रदान की गई। रेखाचित्र व्यक्ति का ही नहीं बल्कि स्थान और परिवेश का भी हो सकता है। रेखाचित्र में कथा, काव्य एवं गीत सभी के तत्व पाए जाते हैं, किंतु इनके बावजूद वह इनसे स्वतंत्र विधा के रूप में अपनी पहचान बनाता है।

हिन्दी में रेखाचित्र की शुरुआत प्रधानतः छायावाद युग से मानी जाती है। श्रीराम शर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी तथा महादेवी वर्मा ने रेखाचित्र के प्रारंभ एवं विकास में ऐतिहासिक भूमिका निभाई है। श्रीराम शर्मा का 'बोलती प्रतिमा' (1937) एक उल्लेखनीय रेखाचित्र संकलन माना गया है। बनारसीदास चतुर्वेदी ने संतों, समाजसेवियों, देशसेवकों और साहित्यकारों से संबद्ध अनेक यादगार रेखाचित्र लिखे। किंतु, हिन्दी में रेखाचित्र को एक स्पष्ट व पृथक् पहचान देने में महादेवी वर्मा की भूमिका ऐतिहासिक रही है। महादेवी वर्मा के प्रतिनिधि रेखाचित्र हैं—'बिन्दा' (1934), 'सबिया' (1934), 'बिट्टो' (1935), 'घीसा' (1936)।

रेखाचित्र साहित्य के विकास एवं उन्नयन की दिशा में 'हंस' का 'रेखाचित्र विशेषांक' (मार्च, 1939) उल्लेखनीय है। इस विशेषांक ने हिन्दी के रेखाचित्र लेखकों को एक सांगठनिक स्वरूप प्रदान किया एवं उन्हें अखिल भारतीय स्तर पर स्वीकृति प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसमें बनारसीदास चतुर्वेदी के रेखाचित्र अत्यंत लोकप्रिय हुए। उन्होंने 'मधुकर' के रेखाचित्र विशेषांक (1946) का भी संपादन किया। इसके बाद उन्होंने 'हमारे आराध्य' (1952), 'रेखाचित्र' (1952) नामक रेखाचित्र संग्रहों को प्रकाशित करवाया। इन रेखाचित्रों में देश-प्रेम एवं राष्ट्रीयता को प्रमुखता प्राप्त हुई है।

हिन्दी रेखाचित्र के विकास में जिस एक व्यक्ति को कभी भुलाया नहीं जा सकता, वे हैं— रामवृक्ष बेनीपुरी। 'लाल तारा' (1938), 'माटी की मूरतें' (1946), 'गेहूँ और गुलाब' (1950) तथा 'मील के पत्थर' (1957) इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। यथार्थ के साथ कल्पना और भावुकता का समन्वय, विषय वैविध्य तथा शब्दों एवं वाक्यांशों का संयुक्त प्रयोग बेनीपुरी जी के रेखाचित्रों की ऐसी विशेषताएँ हैं जो पाठक की स्मृति में सदा के लिए अपना स्थान बना लेती हैं। बेनीपुरी जी ने रेखाचित्र को संवेदनात्मक एवं वैचारिक गहराई प्रदान की।

रेखाचित्र एवं संस्मरण प्रायः सहवर्ती विधाएँ मानी जाती हैं। कई रेखाचित्रों का आधार भी स्मृति होती है जो कि संस्मरण का भी आधार होती है। यही कारण है कि कई बार रेखाचित्र एवं संस्मरण में अंतर करना कठिन हो जाता है। इसी कारण कुछ रेखाचित्रों को 'संस्मरणात्मक रेखाचित्र' एवं कुछ संस्मरणों को 'रेखाचित्रात्मक संस्मरण' भी कहा जाता है। 'संस्मरणात्मक रेखाचित्र' के लेखन में महादेवी वर्मा की चर्चा अपरिहार्य है। 'अतीत के चलचित्र' (1941), 'स्मृति की रेखाएँ' (1947), 'पथ के साथी' (1956), 'स्मारिका' (1971) और 'मेरा परिवार' (1972) उनके उल्लेखनीय 'संस्मरणात्मक रेखाचित्र' संग्रह हैं। इनमें निबंध, संस्मरण एवं कहानी तीनों के तत्व मिलते हैं। किंतु, सर्वस्वीकृत मत के आधार पर इन्हें 'संस्मरणात्मक रेखाचित्र' ही माना गया है। इनकी अंतर्वस्तु में शोषित व्यक्तियों, दीन-हीन नारियों, साहित्यकारों, जीव-जन्तुओं आदि का संवेदनात्मक चित्रण अत्यंत मार्मिक रूप में हुआ है। संस्मरणात्मक रेखाचित्रों के क्षेत्र में शिवपूजन सहाय का नाम भी अविस्मरणीय है। 'वे दिन वे लोग' में उनके रेखाचित्र संकलित हैं। व्यंग्य विनोद से पुष्ट मुहावरेदार भाषा में लिखे उनके संस्मरणात्मक रेखाचित्रों में ग्रामीण परिवेश जीवंत हो उठता है। कुछ विद्वानों ने इनके कुछ रेखाचित्रों को 'आंचलिक उपन्यास' की श्रेणी में भी रखा है।

रेखाचित्र के विकास में प्रकाशचन्द्र गुप्त का भी महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने 'रेखाचित्र' (1940) में वस्तुओं, स्थानों आदि पर मर्मस्पर्शी रेखाचित्र संकलित किए हैं। इनके रेखाचित्रों पर विदेशी लेखकों विशेषकर ए.जी. गार्डनर के रचना शिल्प का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर के रेखाचित्र 'दीप जले शंख जले' में संग्रहित हैं। मामूली से मामूली व्यक्ति अथवा घटना पर प्रांजल भाषा व चुस्त शैली में रेखाचित्र लिखना उनकी विशेषता मानी जाती है।

## डी.एल.पी. बुकलेट्स की विशेषताएँ

- आयोग के नवीनतम पैटर्न पर आधारित अध्ययन सामग्री।
- ✓ पैराग्राफ, बुलेट फॉर्म, सारणी तथा फ्लोचार्ट का उपयुक्त समावेश।
- ✓ विषयवस्तु की सरलता, प्रामाणिकता तथा परीक्षा की दृष्टि से उपयोगिता पर विशेष ध्यान।
- ✓ प्रत्येक अध्याय के अंत में विगत वर्षों में पूछे गए एवं संभावित प्रश्नों का समावेश।

**Website : [www.drishtiIAS.com](http://www.drishtiIAS.com)**

**E-mail : [online@groupdrishti.com](mailto:online@groupdrishti.com)**

 **DrishtiIAS**

 **YouTube** Drishti IAS

 **drishtias**

 **drishti**thevisionfoundation